P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-7* (Part-1) October- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में धर्म का स्वरूप

स्वेता
शोधार्थी,
इतिहास विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक

सारांश

भारतीय संस्कृति की ऐतिहासिक यात्रा का प्रारंभ – जहाँ धर्म एवं धार्मिक लोकोत्तर भावना के उदय का प्रश्न है तो इसे किसी निश्चित तिथि एवं समय से नहीं जोड़ा जा सकता। पाषाण काल (उच्च पुरापाषाण काल) में उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर जिले की बेलन घाटी के लौहदा नाला क्षेत्र से उत्खनन में प्राप्त मातृदेवी की प्रतिमा[1] के साथ –साथ कपितय मध्यपाषाणिक पुरास्थलों में इसके उद्भव के बीज को ढूढ़ा जा सकता है। मध्यपाषाणिक पुरास्थलों सरायणाहरराय तथा महदया आदि से प्राप्त विभिन्न प्रकार की समाधियों से तत्कालिन अन्त्येष्टि संस्कार विधि के बारे में पता चलता है तथा इससे ज्ञात होता है कि वे लोग अपने मृतको को समाधियों में गाड़ते थे तथा उनके साथ आवश्यक साम्रगियाँ, औजार और हथियार भी रखते थे। सम्भवतः यह किसी लोकोत्तर जीवन में विश्वास का सूचक था।[2] इसके अतिरिक्त मध्यप्रदेश में भीमबटेका और आदमगढ़ से प्राप्त चित्रों में बच्चों के जन्म, पालन–पोषण और खाद्यानों से संबंधित अनुष्ठानों के चित्रांकन आदि से भी संकेत मिलता है कि तत्कालीन लोगों का जीवन धार्मिक विश्वासों से प्रभावित था।[3] कालान्तर में नवपाषाण काल में कृषि और पशुपालन के विकास के साथ धर्म के अन्य आचार व्यवहारों का विकास जैसे – मरणोपरान्त जीवन मृत्यु के बाद पुर्नजनम और पुनर्जन्म चक्र के संबंध में विश्वास जैसी नयी अवधारणाओं के उदय देखने को मिलते है।[4] निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जहाँ से इसके अवशेष चिन्ह हमें प्राप्त होते है एवं जहाँ से कपितय संकेत मिलते प्रारंभ हो जाते हैं, जो मानव की ऐसी आस्थाओं को अभिव्यक्त करते है जिनका संबंध हम क्रमशः अन्धविश्वास, धर्म से जोड़ सकते है।[5] वहाँ से भारतीय संस्कृति की ऐतिहासिक यात्रा का प्रारंभ माना जा सकता है।

मुख्य शब्द : धर्म की परिभाषा, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, वज्रयान सप्रदाय, वैष्णव धर्म, तंजयान, मीमांसा दर्शन, विश्वमूर्ति, हिन्दू, वेद इत्यादि।

प्रस्तावना

धर्म मानव संस्कृति एवं सभ्यता का एक ऐसा पक्ष है जो आदिम काल से विश्व की प्रत्येक संस्कृति में अनिवार्यतः प्राप्त होता है। धर्म के आयाम मानव चिंतन के ही विविध आयाम है। धर्म शब्द के मूल में धारिता अर्थात् धारणीय गुण का होना आवश्यक एवं अनिवार्य हैं। धारण करना, ग्रहण करना, बिखरने न देना आदि धर्म का प्रथम और प्रमुख लक्षण है, अर्थात् धर्म वह तत्व है जो धारण किये रहे। यदि हम सांस्कृतिक व्यवस्था के संदर्भ में देखे तो धर्म सांस्कृतिक तत्वों को व्यवस्थित रखता है। उन्हें बिखरने नहीं देता और सम्पूर्ण व्यवस्था को जीवित बनाएँ रखता है। निश्चय ही धर्म वह तत्त्व है जो न केवल व्यक्ति के व्यक्तित्व को गति प्रदान करता है वरन् सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण को भी गहराई से प्रभावित करता है।

बी०एस० अग्रवाल ने ''भारतीय संस्कृति और कला'' नामक पुस्तक में यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि यदि धर्म की सभी परिभाषाओं को एकत्रित किया जाए तो वह धर्मों का 'अजायबधर' बन जायेगा। इसलिये धर्म की कोई एक परिभाषा भारत में कमी भी स्वीकार नहीं की गयी। भारतीय धर्म एवं उससे संयुक्त विविध पक्षों पर यदि ध्यान दिया जाए तो इसमें अनेक ऐसी संभावनायें दिखायी पड़ती है जिसका ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन करना नितांत आवश्यक प्रतीत होता है।

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोधपत्र का उद्देश्य पूर्व मध्य–कालीन उत्तर भारत में धर्म का स्वरूप पर चर्चा करना है।

साहित्य अवलोकन

इस सृष्टि की उत्पत्ति किस प्रकार हुई। उस परमात्मा की जिसने इस सृष्टि के समस्त 'चर और 'अचर' भाग का निर्माण किया, मानव को इस सृष्टि में

P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-7* (Part-1) October- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

क्या भूमिका है। इन सभी प्रश्नों का समाधान करने में अनेक महापुरुषों ने प्रयत्न किया है। प्रारंभिक पुरापाषाण युग, महापुरापाषाण, वैदिक काल, मौर्यकाल, गुप्त व गुप्तोत्तर काल का इतिहास हमारे पूर्वजों के क्रिया–कलापों से भरा मिलता है। भारतीय इतिहास की जानकारी उपलब्ध कराये जाने के निमित पूर्व वैदिक युग से लेकर मध्यकाल तक अनेक प्रकार के हिन्दू धर्म से संबंधित अनेक साहित्यिक कृतियों की रचना हुई। 'वेद' हिन्दू धर्म का प्रारम्भिक ग्रन्थ है। पूर्वमध्यकालीन धर्म को केन्द्र में रखकर विभिन्न इतिहासकारों ने अपनी पुस्तकों में धर्म के स्वरूप को प्रस्तुत किया है। अमित कुमार दूबे (2017) ने 'पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में धर्म के सामाजिक, आर्थिक आधार पर ऐतिहासिक विमर्श' में धर्म के स्वरूप का अध्ययन किया है।

उत्तर भारत में धर्म

भारतीयों के जीवन में धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस देश में इस बात का कभी प्रयत्न नहीं किया गया कि सभी व्यक्ति एक ही विचारधारा को मानें।[6] पूर्वमध्य कालीन उत्तर भारत में पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता थी। इस काल में हिन्दुओं और बौद्धों में पारस्परिक संबंध बहुत अच्छे थे। बंगाल के शासक बौद्ध थे किन्तु यज्ञों में भाग लेते थे। राष्ट्रकूट शासक दन्तिदुर्ग के अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि उसने बुद्ध, विष्णु और शिव तीनों की स्तुति की थी। यह समन्वयवादी भावना इस काल की कलाओं में भी परिलक्षित होता हैं।

इस काल में धर्म के पूर्व स्वरूप को बहुत अंशों में संवारा गया व धर्म की जनवादी परंपरा को जन्म दिया गया। भारतीय संस्कृति की यह प्रधान विशेषता रही है कि यहाँ तद्युगीन सामाजिक वातावरण व परिस्थितियों के अनुसार देवियों एवं देवताओं की उपासना की जाती है।

निर्गुण, निराकार ईश्वर के स्थान पर सगुण व साकार ईश्वर की स्थापना की गयी। नये देवमण्डल का विकास, मंदिरों की स्थापना मूर्ति–पूजा का प्रारम्भ, मातृशक्ति में विश्वास एवं उनकी विभिन्न रूपों में उपासना एवं अवतार की भावना का विकास हुआ।[7] पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में धर्म के विवेचन से पूर्व उनकी सामान्य पृष्ठभूमि का संज्ञान आवश्यक है। इस काल में जैन धर्म में जीवनशैली में आये परिवर्तनों के फलस्वरूप देव पूजा की शुरूआत हुयी। चूँकि निरन्तर भ्रमणशील रहने वाले और भिक्षाटन पर गुजारा करने वाले जैन साधुओं के लिये जब जीविका के निर्वाह के साधन पक्के हो गये तो उन्होंने ऐसे स्थानों पर बसना शुरू किया जहाँ उन्हें गृहस्थों से अतिथि सत्कार मिल सके। फलस्वरूप उन्होंने मन्दिर बनवाने शुरू किये जिससे जैनों में देव पूजा की शुरूआत हुयी।[8] साधुओं की जीवनशैली में आये इन परिवर्तनों से उनमें सांसारिक वस्तुओं के प्रति लगाव तथा परिग्रह की भावना में वृद्धि हुयी।[9]

पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में विष्णु–शिव की संयुक्त प्रतिभाएँ भी प्राप्त हुयी जो शैव एवं वैष्णव धर्म में समन्वय का प्रतीक है। बंगाल के सेन राजा विजयसेन के देवपाड़ा अभिलेख से विजयसेन द्वारा प्रध्रम्नेश्वर मंदिर में विष्णु की संयुक्त प्रतिमा स्थापित करवाने का उल्लेख मिलता है।[10]

वामनपुराण में शंकर को विष्णु के शरीर में संयुक्त रूप से स्थित होने के कारण 'विश्वमूर्ति' कहा गया।[11] अतः यह वैष्णव व शैव धर्म में परस्पर तादात्म्य स्थापना का सूचक है। बंगाल से प्राप्त दो प्रतिमाओं में एक तरफ विष्णु व लक्ष्मी को प्रतिष्ठापित किया गया है।[12] इस काल में शासकों द्वारा प्रवर्तित कई सिक्को पर विष्णु–लक्ष्मी के साथ हनुमान का अंकन है।[13] संक्षेप में इस काल में धर्म एवं धार्मिक प्रवृत्तियों का स्वरुप निम्न था –

वैष्णव धर्म व उसका स्वरूप

पूर्वमध्यकालीन उत्तर भारत में वैष्णव धर्म वर्णाश्रम व्यवस्था के बंधनों से शिशिल, मानवता का प्रतिपादक एवं अहिंसावाद का समर्थक था। इस काल में पूर्व सामाजिक जीवन व सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार वैदिक कालीन धार्मिक विश्वासों एवं कर्मकाण्डों में हिंसा के फलस्वरूप लोगों की आस्था घटने लगी जिससे वैदिक धर्म ने धीरे–धीरे अपना स्वरूप परिवर्तित करना प्रारम्भ किया। इस परिवर्तन के क्रम में वैदिक धर्म व विश्वास एक नवीन साँचे में ढ़लने लगा। कालान्तर में जनविश्वासों ने एक नया रूप ग्रहण कर लिया जिसमें इष्टदेव की भक्ति को ही अपनी मुक्ति का मार्ग माना गया। वैष्णव धर्म का यह जनप्रिय स्वरूप था। इस स्वरूप में भक्ति व इसके सिंद्धान्तिक पक्ष का ऐसा समय हुआ कि भक्ति ने सैद्धान्तिक पक्ष को अपने में समाहित कर लिया। वैष्णव धर्म के इस रूप में अवतरावाद की मुख्य भूमिका रही।[14] बंगाल एवं बिहार के पाल नरेश ने बौद्ध धर्मानुयायी होते हुऐ भी हिन्दू राजाओं के समान अपने राज्य में सभी धर्मो को संरक्षण प्रदान किया गया तथा उनके खर्च हेतु भूमि एवं ग्राम दान में दिया।[15] गाहड़वालों की मुद्राओं पर गरूड़ एवं शंखप्रक्र का प्रतिमांकन उनके वैष्णव धर्म के प्रति श्रद्धा व भक्ति का परिचायक है।[16] चन्द्रदेव के द्वितीय चन्द्रावती अभिलेख में आदिकेशव की प्रतिमा के समक्ष प्रतिमा को साक्षी मानकर हजारों गायों के दान व मंदिर के रख–रखाव एवं खर्च के निमित्त भू–दान का उल्लेख मिलता है।[17]

वस्तुतः इस काल में वैष्णव धर्म की अत्यधिक उन्नति हुई, जिसका आधार भक्ति मार्ग था। विष्णु के सभी अवतारों की पूजा की जाने लगी। पहले विष्णु के चार या छह अवतार माने जाते थे। बाद में यह संख्या दस और कालान्तर में चौबीस तक पहुँच गई। ऋषभ, बुद्ध, कृष्ण, राम और दत्तात्रेय सब विष्णु के अवतार मान लिें गये।[18] वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यो ने शंकर के अद्वेत सिद्धान्त का डटकर सामना किया। इस कारण जनसाधारण में उनके सिद्धान्त इतने लोकप्रिय न हो सके अपितु भक्ति मार्ग अत्यधिक लोकप्रिय हुआ।

शैव धर्म

उत्तर भारत में गुप्त शासकों के पश्चात् कान्यकुब्ज पर राज्य करने वाले उनके सामन्त मौग्गरे ईशानवर्मा के हरहा लेख (556 ई०) में शिव को विश्व का निर्माता पालनकर्ता वं संहारकर्ता कहा गया है।[19] मैखरी शासक अनन्तवर्मा के नागार्जुन पहाड़ी लेख में अनन्तवर्मा द्वारा शिव एवं पार्वती की मूर्तियाँ के स्थापित करने का उल्लेख मिलता है।[20] कन्नौज के गुर्जर–प्रतिहार राजा व

स्रराज[21] को परममाहेश्वर तथा महेन्द्रपाल–[22] को शिव भक्त बतलाया गया है।

गहड़वाल नरेश अधिकांशतः शैव धर्मानुयायी थे।[23] गाहड़वाल अभिलेखों में अनेक घाटों का नामाकरण भगवान शिव के नाम पर किया गया। वाराणसी में 'त्रिलोचन घाट' उनके शैव आस्था का द्योतक है।[24] गुजरात के चालुक्य राजाओं द्वारा अनेकों शिव मंदिरों का निर्माण, उनके पूजन–अर्चन एवं ग्राम दान दिए जाने का उल्लेख मिलता है। चालुक्य राजा कुमारपाल के संबंध में सूचना प्राप्त होती है कि उसने जैन धर्म अस्वीकार करके परममाहेश्वर की उपाधि के साथ 'उमापतिवरलब्ध' धारण किया।[25] इस काल में स्त्रियों को भी शैव मठों का प्रधान बनाया जाना महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त इस काल की सर्वप्रमुख बात जो दृष्टिगोचर होती है। वह यह कि वैष्णव धर्म जहाँ जनसामान्य का धर्म था, वही शैव धर्म संभ्रान्त वर्गों के बीच अधिक स्वीकार किया गया।

इस युग में शैव धर्म के विकास के साथ शिव की अलग–अलग प्रकार से पूजा करने वाले वर्गों का भी विकास हुआ जो अपने विचारों मंत्रों और सिद्धान्तों के अनुसार शिव की उपासना करते थे। धीरे–धीरे ऐसे उपासकों के पृथक सम्प्रदाय बन गये जो स्वतंत्र शैव सम्प्रदाय के रुप में प्रतिष्ठित हुये।

बौद्ध धर्म व वजयान सम्प्रदाय

पूर्वमध्यकाल में बौद्ध धर्म उत्तरी बिहार, बंगाल व मध्य भारत में विकसित अवस्था में रहा। उत्तर भारत के इतिहास में कन्नौज पर शासन करने वाले पुष्यभूति नरेश हर्षवर्धन ने स्वयं शैव धर्मानुयायी होते हुये भी बौद्ध धर्म को अपने राज्य में संरक्षण प्रदान किया। हर्ष ने उड़ीसा के हीनयान सम्प्रदायियों से शस्त्रार्थ हेतु नालन्दा के आचार्य शीलभद्र व चार अन्य आचार्यों को उड़ीसा भेजने हेड पत्र लिखा था।[26]

हर्ष के पश्चात् पाल शासकों ने बौद्ध धर्म को अपने राज्य में संरक्षण प्रदान किया। गोपाल बौद्ध धर्मानुयायी था। महिपाल देव के नालन्दा शिलापट में उसके द्वारा एक बौद्ध मंदिर के जीर्णोद्वार का उल्लेख है जो भाग में नष्ट हो गया था।

इस काल में बौद्ध संघाराम व बिहार भष्ट्राचार के केन्द्र बन गये। वज्रगुरु जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करते थे उससे अन्धविश्वासी एवं अधर्मी लोग चाहे जितना अनुरक्त हो किन्तु विचारशील एवं विद्वत्जन उससे कदापि संतोष नहीं कर सकते थे।

भारतीय जनमानस में प्रारम्भ से ही तंत्र–मंत्र व शक्ति के प्रति विश्वास विद्यमान था। तंत्र मानवीय जिजीविवा की तीव्रतम अनुभूति है जिसमें योग व भोग का उपपूर्व समन्वय होता है। संस्कृत धातु तन् से उत्पन्न 'तत्र' शब्द ज्ञान के विस्तार का परिचायक है। तंत्रवाद के अनुसार पुरुष एवं प्रकृति का योग ही इस सृष्टि का अंतिम सत्य है।[27]

वज्रयान संप्रदाय का अनुकरण करने वाले को सम्भवतः चार प्रमुख चरणों में रखा जाता था। क्रिया तत्रयान, चर्या तत्रयान, योग तंत्रयान, महायोग तंत्रयान, अनुत्तरयोग तंत्रयान एवं अतियोग तंत्रयान। इस सम्प्रदाय में बोधिसत्व की महता थी। गुह्य समाज के अनुसार बौधिसत्व वह है जहाँ शून्यता व करूणा मिलकर कार्य करते है।[28] ध्यातत्व है कि बौद्ध तन्त्रों ने कतिपय उपलब्धियों के लिये मार्गदर्शन भी किया। प्रेम में सफलता प्राप्ति से लेकर निर्माण तक के लिये यंत्रों के प्रयोग की चर्चा है ऐसा विश्वास किया जाता है कि तत्र ऐसी विधि उपस्थित करते है जिसके द्वारा सामान्य ज्ञान के व्यक्ति भी लाभ उठा सकते है। इसके द्वारा चाक्षुप्व एवं शारीरिक गतियों से आध्यात्मिक प्राप्त हो सकती है तथा मन्त्रों के पाठ, मण्डलों, संयत्रों से मुक्ति में शीघ्रता हो सकती है। वस्तुतः अलौकिक शक्तियों एवं मुक्ति प्राप्ति के लिये मकारों की व्यवस्थाओं से जनता क्षुब्ध हो चुकी थी, जिससे कालान्तर में तंत्रों की अवमानना प्रारंभ हो गई।

जैन धर्म

पूर्वमध्यकालीन उत्तर भारत के राजाओं ने अन्य धर्मो की भाँति जैन धर्म को भी प्रश्रय दिया और अपने राज्य में प्रजा द्वारा स्वीकार किये जाने पर किसी भी तरह का कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया। कुमारपाल ने पाटन में कुमार बिहार का निर्माण करवाया तथा उसमें पार्श्वनाथ की एक विशाल मूर्ति की स्थापना करवायी। चायुण्डराज द्वारा रणथम्भौर के जैन मंदिर में कलक कलश की स्थापना का उल्लेख है। विग्रहराज द्वार एक विहार का निर्माण करवाने व जैन आचार्य धर्मघोष के कहने पर एकादशी के दिन अपने राज्य में पशु–वध का निषेध करवा दिया था।

सातवी–आठवी सदी ईस्वी में उत्तर भारत में जैन धर्म का अपेक्षाकृत विकास एवं विस्तार हुआ इस युग में जैन धर्म में कतिपय परिवर्तन दिखायी देते है। जैन धर्माचार्यों ने मठो में रहने वाले साधकों को दीक्षा व निश्चित दिशा प्रदान करने के उद्देश्य से प्रेरित होकर अपने–अपने नियम व व्यवस्था बनाई जो गृच्छ कहे जाते थे। जौधपुर संग्रहालय से प्राप्त देवी प्रतिमा के नीचे नरेश गृच्छ का उल्लेख है।[29]

वस्तुतः जैन धर्म की स्थिति बौद्ध धर्म से कुछ अच्छी थी परन्तु इसमें भी मूर्ति– पूजा प्रारम्भ हो गई। कालान्तर में जैन धर्म में भी उन्हीं अवगुणों का प्रवेश हुआ जो अन्य धर्मों, शैव, बौद्ध, वैष्णव धर्मों में व्याप्त थे। संघ में प्रवेश के समय जाति भेद व ऊँच–नीच की भावना ने जैन धर्म को कमजोर बना दिया। काया–कलेश, कठोर तप व निर्वस्त्रता जैसे सिद्धांत ने इसके विकास में अवरोध की भूमिका निभाई। साधारण जनता ऐसे धार्मिक समुदाय से हटकर अन्य धर्मो के प्रति आकृष्ट हुई और जैन धर्म का पतन हो गया।

निष्कर्ष

धर्म व अध्यास भारतीय संस्कृति व जीवन के सदैव से प्रमुख अंग रहे है और प्रत्येक काल में मानव ने इसे किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है। समय–समय पर भारत में विभिन्न धर्मो का आविर्भाव हुआ जिनमें हिन्दू, बौद्ध व जैन आदि प्रमुख है। इन सभी धर्मों की विभिन्न शाखाओं का भी वर्णन इतिहास में मिलता है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य के धर्म का स्वरुप भी समय–समय पर बदलता रहा है, जिसका कारण समय व काल स्वीकार किया जा सकता है।

P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-7* (Part-1) October- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

धर्म हमारे व्यक्तिगत, सामाजिक और पारलौकिक जीवन में मित्र का कार्य करता है। धर्म की व्याख्या की गई है। धारणात् धर्म अर्थात् जो सभी को धारण करता है। इसलिये वह धर्म है। समाज की सामाजिक संरचना धार्मिक विचारों से प्रभावित होती है इसलिये मनुष्य के अधिकतर कर्म और विचार कुछ विशेष धार्मिक मान्यताओं तथा विश्वासों द्वारा निर्धारित होते रहे है। इस रूप में धर्म मानव जीवन के पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि महत्त्वपूर्ण पक्षों को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *पाण्डे, एस०के०, प्राचीन भारत, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, पृ० 23*
2. *पूर्वोद्धत, पृ० 32*
3. *पूर्वोद्धत*
4. *वही, पृ० 33*
5. *श्रीमाली, के०एम०, धर्म, समाज और संस्कृति, ग्रंथ शिल्पो, दिल्ली, 2005, पृ० 9*
6. *शर्मा, आर०एस०, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, 2003, पृ० 264*
7. *सिंह, रविनन्दन, भारतीय धार्मिक चेतना के आयाम, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016, पृ० 144–48*
8. *नन्दी, आर०एन०, प्राचीन भारत में धर्म के सामाजिक आधार, (अनु०) नरेन्द्र व्यास, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 2008, पृ० 103*
9. *पूर्वोद्धत*
10. *इन्सक्रिप्शंस ऑफ बंगाल, खण्ड–III, पृ० 46*
11. *वामनपुराण, 36.21–23 व 29–31*
12. *बनर्जी, आर०डी०, इस्टर्न इण्डिया स्कूल ऑफ मेडिवल स्कल्पचर, पृ० 105*
13. *यादव, वी०एन०एस०, सोसयटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इन ट्वेल्थ सेन्चुरी ए०डी०, इलाहाबाद, 1973, पृ० 356*
14. *पूर्वोद्धत, पृ० 100*
15. *पाण्डेय, हीरालाल, उत्तर भारती राजाओं की धार्मिक नीति, पृ० 162–63*
16. *नियोगी, रोमा, दि हिस्ट्री ऑफ दि गाहड़वाल डाइनेस्टी, कलकत्ता, 1959, पृ० 194–95*
17. *ए०इ०, XIV, पृ० 197–200*
18. *सिंह, निरंजन, प्राचीन भारत का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 159*
19. *पूर्वोद्धत, पृ० 174*
20. *नागार्जुन, पहाड़ी गुफालेख, संख्या 1, पृ० 135*
21. *ए०ठ० जिल्द 14, पृ० 182*
22. *पूर्वोद्धत*
23. *पूर्वोद्धत, पृ० 197*
24. *वही, पृ० 148*
25. *द्विवेदी, हजारी प्रसाद, प्रबन्ध चिन्तामणि, सिन्धो ग्रन्थमाला, 1940, पृ० 26*
26. *बही, एस०, द लाइफ ऑफ हूवेनसांग, पृ० 16*
27. *गोस्वामी, प्रेमचन्द्र, भारतीय कला के विविध स्वरुप, पृ० 48*
28. *शर्मा, डी, अर्ली एलर्स ऑफ चाहमानाज डाइनेस्टीज, पृ० 223*
29. *राजतंरगिणी, IV, 5.6*